[2008] 17 एस.सी.आर. वामन नारायण घिया

बनाम

राजस्थान राज्य

(2008 की आपराधिक अपील संख्या 406)

12 दिसंबर, 2008

[डॉ. अरिजीत पासायत और डॉ. मुकुंदकम शर्मा, जे. जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – एस.439–अभियुक्त द्वारा माँगी गई जमानत–इस आधार पर कि उसे दस में से छह मामलों में जमानत पर रिहा कर दिया गया था कि उसे आई.पी.सी. की धारा 413 के तहत आरोपमुक्त कर दिया गया था और केवल उन अपराधों के लिए मुकदमे का सामना कर रहा था जिन पर मजिस्ट्रेट द्वारा मुकदमा विचारणीय था कि वह ढाई साल से अधिक समय से जेल में था और समान रूप से स्थित दो सह–अभियुक्तों को जमानत पर रिहा कर दिया गया–उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया। इसके बाद उच्च न्यायालय द्वारा आई.पी.सी. की धारा 413 के तहत आरोपमुक्त कर दिया गया और इसके खिलाफ अपील की गई। उच्च न्यायालय के आदेश को वापस लेने के रूप में अपील को खारिज कर दिया गया। अपील दाखिल की गयी–अभियुक्त जमानत का हकदार नहीं है।

जमानत–अर्थ और उद्देश्य–जमानत देते समय पालन किए जाने वाले सिद्धांत–आयोजित/दाखिल किए गए जमानत याचिका पर विचार करते समय, साक्ष्य और विस्तृत दस्तावेजों पर विस्तृत चर्चा करें, जिन गुणों से बचा जाना चाहिए–एक आरोपी को उसके अपराध की धारणा पर हिरासत में नहीं लिया जाता है, लेकिन यह एक ऐसा तंत्र है जिसके तहत राज्य कैदी की उपस्थिति सुनिश्चित करने का कार्य समुदाय को सौंपता है– अभियुक्त की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पुलिस के जांच–अधिकार और समाज की रक्षा की आवश्यकता के बीच और अभियुक्त के नुकसान के खतरों से समाज की रक्षा की आवश्यकता और अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता की आपराधिक न्यायशास्त्र की मौलिक तोप के बीच संतुलन बनाए रखा जाना है।

शब्द और वाक्यांश–'जमानत'–दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के संदर्भ में इसका अर्थ।

निरंजन सिंह आदि बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे आदि **ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 785;** महाराष्ट्र राज्य बनाम आनंद चैन्तामन दिघे **ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 625 और** राज्य बनाम सुरेंद्रनाथ मोहंती **1990 (3) एस.सी.आर. 462, पर निर्भर थे।**

सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य **ए.आई.आर. 1996 एस.सी 1042;** के.एल. वर्मा बनाम राज्य और अन्य **1996(7) स्केल 20;** निर्मल जीत कौर बनाम एम.पी. राज्य और अन्य **2004(7) एस.सी.सी. 558;** सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य और अन्य **2004 Supp.(6) एस.सी.आर. 707;** ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य **1950 एस.सी. 1000, संदर्भित।**

स्ट्रौड्स' न्यायिक शब्दकोश **(चौथा संस्करण 1971), संदर्भित किया गया।**

मामला कानून संदर्भः

ए.आई.आर 1996 एस.सी. 1042	**उल्लेख किया गया है**	**पैरा 6**
1996 (7) स्केल 20)	**उल्लेख किया गया है**	**पैरा 7**
2004 (7) एस.सी.सी. 558	**उल्लेख किया गया है**	**पैरा 8**
2004 (6) Supp. एस.सी.आर. 707	**उल्लेख किया गया है**	**पैरा 8**
ए.आई.आर 1950 एस.सी 1000	**उल्लेख किया गया है**	**पैरा 15**
ए.आई.आर 1980 एससी 785	**इस पर भरोसा किया**	**पैरा 19**
ए.आई.आर. 1990 एस. सी. 625	**इस पर भरोसा किया**	**पैरा 19**
1990 (3) एस.सी.आर. 462	**इस पर भरोसा किया**	**पैरा 19**

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील 2008 की सं. 406

जोधपुर में राजस्थान उच्च न्यायालय की कार्यपालिका के आदेश दिनांकित 03.02.2006 से 2005 के एस.बी. आपराधिक जमानत आवेदन संख्या 2759 में,

एस.आर. बाजवा, विवेक राज सिंह बाजवा, ए.पी. जैन, एल.पी. सिंह,

अकलान के. जैन, अनुराग जैन और एन. अन्नपुरानी .....अपीलार्थी।

अरुणेश्वर गुप्ता, ए.ए.जी., अल्ताफ अहमद, नवीन कुमार सिंह, शाश्वत गुप्ता और भारत

भूषण .....उत्तरदाता।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था–

डॉ. अरिजीत पासायत, जे. 1. इस अपील में चुनौती जोधपुर में राजस्थान उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को दी गई है, जिसमें अपीलकर्ता द्वारा दायर जमानत के आवेदन को खारिज कर दिया गया था। अपीलाकर्ता द्वारा दायर जमानत के लिए पूर्व आवेदन को भी उच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिनांकित 15.12.2003 को खारिज कर दिया गया था। अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप था कि वह भारी रकम के लिए प्राचीन वस्तुओं विशेषकर मूर्तियों की विदेशों में तस्करी की कई घृणित गतिविधियों में शामिल है।

2. उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता का पक्ष यह था कि उसे ट्रायल कोर्ट द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 413 के तहत दंडनीय अपराध से मुक्त कर दिया गया था और इसलिए वह केवल मुकदमे का सामना कर रहा था, मजिस्ट्रेट की अदालत द्वारा विचारणीय अपराध, अर्थात् आईपीसी की धारा 457,380 और 411 के तहत। अपीलकर्ता का यह कहना था कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य किसी भी आरोप के संबंध में उसकी दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं थे। बताया गया कि सात गवाहों की गवाही दर्ज की गई है। उनमें से किसी ने भी उसे अपराध में शामिल नहीं किया है। उनसे और इसी तरह के अन्य सह–आरोपियों अर्थात् मैडम मोहन अग्रवाल और मनोज शर्मा से कोई वसूली नहीं हुई है, को जमानत पर रिहा कर दिया गया था। उनके खिलाफ दर्ज दस मामलों में से छह मामलों में उन्हें जमानत मिल चुकी है। वह ढाई वर्ष से अधिक समय से जेल में है और किसी भी स्थिति में वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(संक्षेप में 'संहिता') की धारा 437(6) में निहित प्रावधानों के मद्देनजर जमानत का हकदार है। राज्य ने इस आधार पर जमानत आवेदन का विरोध किया कि एक समान मामले में आवेदक का आवेदन जयपुर पीठ द्वारा खारिज कर दिया गया था और मामला इस न्यायालय में ले जाया गया था और कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था। इसके अलावा आईपीसी की धारा 413 के तहत दंडनीय अपराध के संबंध में आरोपमुक्त करने के आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर करके चुनौती दी गई थी। उपरोक्त पहलुओं को ध्यान में रखते हुए जमानत प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया।

3. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि कार्यवाही रोक दी गई है और कई मामलों को एक साथ जोड़ दिया गया है, आरोप पत्र 27.9.2003 को दायर किया गया था और 21.4.2005 को आरोपमुक्त करने का आदेश पारित किया गया था। इसके बाद, एस.बी. 2005 की आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 817 में उच्च न्यायालय द्वारा आरोपमुक्त करने के आदेश को रद्द कर दिया गया। मुक्ति के उसी आदेश को2007 की आपराधिक अपील संख्या 1585 में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। जिसे वापस ले लिया गया मानकर खारिज कर दिया गया। जमानत के लिए प्रार्थना पर पुनर्विचार करने के लिए अपीलकर्ता द्वारा बताई गई एकमात्र विशिष्ट विशेषता आरोपमुक्त करने का आदेश था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इसे उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था। इसके खिलाफ अपील को वापस लेने के रूप में खारिज कर दिया गया है।

4. संहिता की धारा 439 इस प्रकार हैः

"439. (1) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय निर्देश दे सकता है –

(क) कि कोई भी व्यक्ति जिस पर अपराध का आरोप है और वह हिरासत में है, जमानत पर रिहा किया जा सकता है और यदि अपराध धारा 437 की उप–धारा (3) में निर्दिष्ट प्रकृति का है, तो कोई भी शर्त लगा सकता है, जिसे वह उस उप–धारा में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए आवश्यक समझता है;

(ख) कि किसी भी व्यक्ति को जमानत पर रिहा करते समय मजिस्ट्रेट द्वारा लगाई गई किसी भी शर्त को अलग रखा जाए या संशोधित किया जाए।"

(जोर देने के लिए रेखांकित)

5. प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 439 के संदर्भ में आवेदन करने के लिए एक व्यक्ति को हिरासत में होना होगा। संहिता की धारा 438 "गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने के निर्देश" से संबंधित है।

6. सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य (एआईआर 1996 एससी 1042) में यह इस प्रकार देखा गया था: "गैर–जमानती मामलों में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में अग्रिम जमानत दी जाती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अपराधी पर मुकदमा चलाने वाली नियमित अदालत को दरकिनार करने की कोशिश की जा रही है और यही कारण है कि उच्च न्यायालय ने जमानत जारी रखने के लिए बाहरी तारीख तय की और उसकी समाप्ति की तारीख पर याचिकाकर्ता को जमानत के लिए नियमित अदालत में जाने का निर्देश दिया। यह पालन करने के लिए एक कानूनी प्रक्रिया है क्योंकि इसे तब महसूस किया जाना चाहिए जब सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय अग्रिम जमानत दे रहा हो, यह उस चरण में दिया जाता है जब जांच अधूरी होती है और इसलिए, इसमें कथित अपराधी के खिलाफ सबूत की प्रकृति के बारे में जानकारी नहीं दी गई है। इसलिए, यह आवश्यक है कि ऐसे अग्रिम जमानत आदेश केवल सीमित अवधि के हों और आमतौर पर उस अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर अग्रिम जमानत देने वाली अदालत को साक्ष्य की सराहना के आधार पर मामले से निपटने के लिए इसे नियमित अदालत पर छोड़ देना चाहिए। जांच में प्रगति होने या आरोपपत्र दाखिल होने के बाद इसे इसके समक्ष रखा जाता है।" (जोर दिया गया)

7. के. एल. वर्मा बनाम राज्य और अन्य (1996 (7) स्केल 20) में न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"इस अदालत ने आगे कहा कि गैर–जमानती मामलों में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में अग्रिम जमानत दी जाती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि नियमित अदालत, जिसे अपराधी पर मुकदमा चलाना है, को नजरअंदाज करने की कोशिश की जा रही है। इसलिए, यह बताया गया कि यह आवश्यक है कि ऐसे अग्रिम जमानत आदेश केवल सीमित अवधि के हों और आमतौर पर उस अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर अग्रिम जमानत देने वाली अदालत को इससे निपटने के लिए इसे नियमित अदालत पर छोड़ देना चाहिए। जांच में प्रगति होने या आरोपपत्र दाखिल होने के बाद सामने रखे गए सबूतों की सराहना पर। इसके द्वारा, न्यायालय यह बताना चाहता था कि अग्रिम जमानत का आदेश मुकदमे के अंत तक लागू नहीं होता है, लेकिन यह सीमित अवधि का होना चाहिए क्योंकि नियमित अदालत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। सीमित अवधि का निर्धारण मामले के तथ्यों और आरोपी को जमानत के लिए नियमित अदालत में जाने के लिए पर्याप्त समय देने और नियमित अदालत को जमानत आवेदन निर्धारित करने के लिए पर्याप्त समय देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जब तक जमानत आवेदन का निपटारा किसी न किसी तरह से नहीं हो जाता, तब तक अदालत आरोपी को अग्रिम जमानत पर रहने की अनुमति दे सकती है। इसे अलग ढंग से कहें तो, अग्रिम जमानत एक अवधि के लिए दी जा सकती है जो जमानत आवेदन के निपटारे की तारीख तक या उसके कुछ दिनों तक भी बढ़ सकती है ताकि आरोपी व्यक्ति यदि चाहें तो उच्च न्यायालय में जा सकें।

(जोर दिया गया)

8. निर्मल जीत कौर बनाम एम.पी. राज्य और अन्य (2004 [2008] (7) एस.सी.सी. 558) और सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य और अन्य 2003 की एसएलपी (सीआरएल) संख्या 4601 से उत्पन्न आपराधिक अपील का निपटारा 6.12.2004 को किया गया, के.एल. वर्मा के मामले (सुप्रा) के मामले में कुछ ग्रे क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया। अवलोकन से संबंधित "या उसके कुछ दिन बाद भी ताकि आरोपी व्यक्ति चाहें तो उच्च न्यायालय में जा सकें। यह माना गया कि उपरोक्त टिप्पणियों से संहिता की धारा 439 की आवश्यकता समाप्त नहीं होती है। धारा 439 तभी लागू होती है जब कोई व्यक्ति "हिरासत में" है। के.एल. वर्मा के मामले(सुप्रा) में सलाउद्दीन के मामले(सुप्रा) का संदर्भ दिया गया था। उक्त मामले में ऐसा कोई संकेत नहीं था जैसा कि के.एल. वर्मा के मामले(सुप्रा) में दिया गया था, कि आरोपी को कुछ दिन दिए जा सकते हैं यदि वे चाहें तो उच्च न्यायालय में जाएँ। संहिता की धारा 439 की वैधानिक आवश्यकता को उक्त अवलोकन द्वारा पूरी तरह से निष्क्रिय नहीं कहा जा सकता है।

9. धारा 439 की स्पष्ट भाषा को देखते हुए और निरंजन सिंह और अन्य मामले में इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए। वी. प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य(एआईआर 1980 एससी 785), इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब तक कोई व्यक्ति हिरासत में नहीं है, संहिता की धारा 439 के तहत जमानत के लिए

आवेदन सुनवाई योग्य नहीं होगा। यह प्रश्न कि किसी व्यक्ति को संहिता की धारा 439 के अर्थ में हिरासत में कब कहा जा सकता है, उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था।

10. महत्वपूर्ण प्रश्न का विश्लेषण करने के बाद कि जब कोई व्यक्ति हिरासत में है, तो संहिता की धारा 439 के अर्थ के तहत, निर्मल जीत कौर के मामले (सुप्रा) और सुनीता देवी के मामले(सुप्रा) में यह माना गया कि धारा 439 के तहत आवेदन करने के लिए मूलभूत आवश्यकता यह है कि आरोपी हिरासत में होना चाहिए। जैसा कि सलाउद्दीन के मामले में देखा गया(सुप्रा) धारा 438 के संदर्भ में सुरक्षा सीमित अवधि के लिए है, जिसके दौरान जमानत के लिए नियमित न्यायालय का रुख किया गया है। जाहिर है, ऐसी जमानत संहिता की धारा 439 के संदर्भ में जमानत है, जिसके तहत आवेदक को हिरासत में रहना अनिवार्य है। अन्यथा, धारा 438 और 439 के तहत आदेशों के बीच अंतर अर्थहीन और निरर्थक हो जाएगा।

11. यदि धारा 438 की सुरक्षात्मक छतरी को सलाउद्दीन के मामले (सुप्रा) में निर्धारित सीमा से आगे बढ़ाया जाता है, तो परिणाम स्पष्ट रूप से हिरासत के संबंध में धारा 439 में दिए गए आदेश को दरकिनार कर दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में, जब तक आवेदक उच्च न्यायालयों तक उपचार का लाभ नहीं उठा लेता, तब तक धारा 439 की आवश्यकताएं निरर्थक बन जाती हैं। किसी क़ानून के किसी भी भाग को उस तरीके से निरर्थक नहीं बनाया जा सकता है।

12. धारा 438 एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है जो एक ऐसे व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित है जो निर्दोष होने की दलील देने का हकदार है, क्योंकि वह संहिता की धारा 438 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए आवेदन की तारीख पर अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया गया है। जिस पर वह जमानत चाहता है। आवेदक को यह दिखाना होगा कि उसके पास 'विश्वास करने का कारण' है कि उसे गैर–जमानती अपराध में गिरफ्तार किया जा सकता है। 'विश्वास करने का कारण' अभिव्यक्ति का प्रयोग कि उसे गैर–जमानती अपराध में गिरफ्तार किया जा सकता है। 'विश्वास करने का कारण' अभिव्यक्ति का उपयोग दर्शाता है कि आवेदक को उचित आधार पर गिरफ्तार किया जाना चाहिए। केवल "डर" विश्वास नहीं है, इसी कारण से आवेदक के लिए यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उसके खिलाफ आरोप लगाने जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। आधार जिस पर आवेदक का यह विश्वास आधारित है कि उसे गैर–जमानती अपराध में गिरफ्तार किया जा सकता है, उसे जांच करने में सक्षम होना चाहिए। यदि कोई आवेदन उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में किया जाता है, तो यह संबंधित न्यायालय को निर्णय लेना है कि क्या मांगी गई राहत देने के लिए एक मामला बनाया गया है। आरोपी की गिरफ्तारी के बाद प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता है। आम तौर पर एक व्यापक आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए। यह अनुभाग की भाषा से आता है जिसके लिए आवेदक को यह दिखाने की आवश्यकता होती है कि वह यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। किसी विश्वास को उचित आधार पर तभी स्थापित कहा जा सकता है, जब उसके आधार पर कुछ ठोस हो, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि आवेदक को यह आशंका है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। असली। आम तौर पर इस आशय का निर्देश जारी नहीं किया जाना चाहिए कि आवेदक को "किसी भी अपराध के लिए गिरफ्तार किए जाने पर" जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। इस तरह के 'कंबल आदेश' को पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह किसी भी और हर तरह की कथित गैरकानूनी गतिविधि को कवर करने या संरक्षित करने के लिए एक कंबल के रूप में काम करेगा। धारा 438 के तहत एक आदेश व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने वाला एक उपकरण है, यह न तो पासपोर्ट है अपराध करना और न ही संभावित या असंभावित किसी भी और सभी प्रकार के आरोपों के खिलाफ ढाल। मामले के तथ्यों पर, ऊपर निर्धारित कानूनी स्थिति की पृष्ठभूमि में विचार करने पर, यह प्रथम दृष्टया ऐसा मामला प्रतीत नहीं होता है जहां शर्तों में कोई आदेश दिया गया हो। संहिता की धारा 438 को पारित किया जा सकता है।

13. "जमानत" सीआरपीसी में एक अपरिभाषित शब्द है। कहीं और इस शब्द को वैधानिक रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। संकल्पनात्मक रूप से, इसे 1948 के संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा के बाद से प्रतिबंध लगाने वाले राज्य के खिलाफ स्वतंत्रता के दावे के अधिकार के रूप में समझा जाता है। जिसके लिए भारतीय एक हस्ताक्षरकर्ता है, जमानत की अवधारणा को मानव अधिकारों के दायरे में जगह मिल गई है। अभिव्यक्ति 'जमानत' का शब्दकोश अर्थ एक कैदी की उपस्थिति के लिए सुरक्षा को दर्शाता है। रिहाई। व्युत्पत्ति के अनुसार, यह शब्द व्युत्पन्न है एक पुरानी फ्रांसीसी क्रिया 'बेलर' से जिसका अर्थ है 'देना' या 'देना', हालांकि एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि इसकी व्युत्पत्ति लैटिन शब्द बैयुलारे से हुई है, जिसका अर्थ है 'बोझ उठाना'। जमानत एक सशर्त स्वतंत्रता है। स्ट्राउड्स ज्यूडिशियल डिक्शनरी (चौथा संस्करण 1971) कुछ अन्य विवरण बताता है। इसमें कहा गया है;

जब किसी व्यक्ति को गुंडागर्दी, गुंडागर्दी के संदेह, गुंडागर्दी का संकेत, या ऐसे किसी मामले के लिए ले जाया जाता है या गिरफ्तार किया जाता है, ताकि उसकी स्वतंत्रता पर रोक लगाई जा सके – और कानून द्वारा जमानती होने के कारण, अपराध की जमानत उन लोगों के लिए होती है जिनके पास उसे जमानत देने का अधिकार है, जो राजा के उपयोग के लिए एक निश्चित धनराशि, या शरीर के बदले शरीर के रूप में ज़मानतदार उसके लिए बाध्य हैं, कि वह अगले सत्र आदि में गोल डिलीवरी के न्यायाधीशों के सामने पेश होगा। फिर इन ज़मानत के बांड पर, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वह उसे जमानत दे दी गई है, अर्थात उसे उसकी उपस्थिति के लिए नियत दिन तक स्वतंत्र रखा गया है।

14. इस प्रकार जमानत को एक तंत्र के रूप में माना जा सकता है जिसके तहत राज्य समुदाय को कैदियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने का कार्य सौंपता है, और साथ ही न्याय प्रशासन में समुदाय की भागीदारी भी शामिल करता है।

15. व्यक्तिगत स्वतंत्रता मौलिक है और इसे केवल कानून द्वारा स्वीकृत किसी प्रक्रिया द्वारा ही सीमित किया जा सकता है। एक नागरिक की स्वतंत्रता निस्संदेह महत्वपूर्ण है लेकिन यह समुदाय की सुरक्षा के साथ संतुलन बनाने के लिए है। आरोपी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आरोपी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। पुलिस का जांच अधिकार। इसके परिणामस्वरूप आरोपी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मामले की जांच करने के पुलिस के अधिकार में न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए। इसे दो परस्पर विरोधी मांगों को संतुलित करना होगा, अर्थात्, एक तरफ, समाज की आवश्यकताएं अपराध करने के कथित आरोप वाले व्यक्ति के दुस्साहस के संपर्क में आने के खतरों से बचाने के लिए; और दूसरी ओर, आपराधिक न्यायशास्त्र की मौलिक तोप, अर्थात, किसी आरोपी को दोषी पाए जाने तक उसके निर्दोष होने का अनुमान लगाना .स्वतंत्रता संपूर्ण संयम के अनुपात में मौजूद है, दूसरों को हमसे दूर रखने के लिए जितना अधिक संयम होगा, हमें उतनी ही अधिक स्वतंत्रता मिलेगी (देखें ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य एआईआर 1950 एससी 1000)।

16. कानून की किसी भी अन्य शाखा की तरह, जमानत के कानून का अपना दर्शन है, और न्याय प्रशासन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और जमानत की अवधारणा उस व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने के लिए पुलिस शक्ति के बीच संघर्ष से उभरती है जिस पर आरोप लगाया गया है। अपराध करना, और कथित अपराधी के पक्ष में निर्दोषता का अनुमान लगाना। किसी अभियुक्त को उसके अपराध के आधार पर दंडित करने के उद्देश्य से हिरासत में नहीं रखा जाता है।

17. अध्याय XXXIII में धारा 436 से 450 तक शामिल हैं। धारा 436 और 437 में मुकदमे और सजा से पहले आरोपी व्यक्तियों को जमानत देने का प्रावधान है। जमानत के प्रयोजनों के लिए, अपराधों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, अर्थात्, (i) जमानती, (ii) गैर–जमानती। धारा 436 जमानती मामलों में जमानत और धारा 437 गैर जमानती मामलों में जमानत देने का प्रावधान करती है। जमानती अपराध का आरोपी व्यक्ति मुकदमा लंबित रहने तक जमानत पर रिहा होने का हकदार है। ऐसे अपराधों के मामले में, यदि आरोपी जमानत देने के लिए तैयार है तो पुलिस अधिकारी को जमानत देने से इनकार करने का कोई विवेक नहीं है। मजिस्ट्रेट को जांच के दौरान जमानत देने का क्षेत्राधिकार तब मिलता है जब आरोपी को उसके सामने पेश किया जाता है। जमानती अपराध में जमानत देने के विवेक का कोई सवाल ही नहीं है। न्यायालय के लिए एकमात्र विकल्प मुख्य अपराधी की साधारण मान्यता लेना या ज़मानत के साथ सुरक्षा की मांग करना है। इस धारा के अधीन व्यक्तियों को तब तक हिरासत में नहीं लिया जा सकता जब तक कि वे जमानत देने या व्यक्तिगत बांड निष्पादित करने में असमर्थ या अनिच्छुक न हों। इस धारा के तहत जमानत देते समय, जमानतदारों के साथ सुरक्षा की मांग के अलावा कोई शर्त लगाने का भी न्यायालय के पास कोई विवेकाधिकार नहीं है।

18. "जमानती अपराध" को सीआरपीसी की धारा 2 के खंड (बी) में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है एक ऐसा अपराध जो सीआरपीसी की पहली अनुसूची में जमानती के रूप में दिखाया गया है, या जिसे किसी अन्य कानून द्वारा जमानती बनाया गया है उस समय लागू है; और "गैर–जमानती सी अपराध" का अर्थ एक अन्य अपराध है।

19. जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय, साक्ष्यों की विस्तृत चर्चा और गुणों के विस्तृत दस्तावेजीकरण से बचना चाहिए। यह आवश्यकता उस वांछनीयता से उत्पन्न होती है जो किसी भी पक्ष को नहीं होनी चाहिए, यह धारणा कि उसके मामले का पूर्व–निर्णय किया गया है। एक प्राइमा का अस्तित्व केवल प्रथम दृष्टया मामले पर विचार किया जाना है। विस्तृत विश्लेषण या गुणों की विस्तृत खोज की आवश्यकता नहीं है। (निरंजन सिंह और अन्य बनाम प्रभाकर राजराम खरोटे और अन्य देखें। एआईआर 1980 एससी 785)। जहां अपराध गंभीर प्रकृति का है, वहां प्रश्न जमानत देने का निर्णय अपराध की प्रकृति और गंभीरता, साक्ष्य की प्रकृति और अन्य बातों के साथ–साथ जनता के व्यापक हित को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। (महाराष्ट्र राज्य

बनाम आनंद चिंतामन दिघे एआईआर 1990 एससी 625 और राज्य बनाम सुरेंद्रनाथ मोहंती 1990 (3) ओसीआर 462)।

20. हमें इस अपील में कोई योग्यता नहीं मिली, जिसे तद्नुसार खारिज कर दिया गया है।

के.के.टी. याचिका खारिज कर दी गई।

अनुवादकर्ता

(राजवीर सिंह)
विशेष न्यायाधीश (बाल न्यायालय) कक्ष सं. 1/
अपर सत्र न्यायाधीश, मऊ।
जे०ओ० कोड–यू.पी. 6119